शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

वेदों का विभाजन : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० प्रताप चन्द्र राय
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
सिधो–कानहो–वीरसा विश्वविद्यालय
पुरुलिया, पश्चिम बंगाल
ईमेलः *pratapvaidik@gmail.com*

प्राप्तिः 29.07.2021
स्वीकृतः 10.09.2021

सारांश

जल, वायु, सूर्यादि विभिन्न ईश्वरीय पदार्थों की तरह वेद भी ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण अपौरुषेय हैं। वेद में मनुष्य को यथार्थ रूप से मनुष्य बनाने का ज्ञान है। यह ज्ञान कोई धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि विशेष के लिए नहीं है, अपितु समग्र मानवजाति के लिए है। यह वेद आदि काल से ही चार भागों में विभक्त हैं या व्यास आदि ने इन का विभाजन किया है, यह इस शोध पत्र का विवेच्य विषय है। आचार्य शंकर आदि विद्वानों के अनुसार अपान्तरतमा नामक वेदाचार्य ने वेदों को ऋगादि चार भागों में विभक्त किया है। सत्यव्रत सामश्रमी ने निरुक्तालोचन ग्रन्थ में वेदों के विभाजन कर्ता के रूप में ऋषि अथर्वा का नाम उल्लेख किया है। आचार्य दुर्ग, महीधर आदि विद्वानों के अनुसार महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेदों का चार भागों में विभाजन किया है। इस प्रकार अपान्तरतमा, अथर्वा और व्यास का नाम वेदों के विभाजन कर्ता के रूप में मध्यकालीन वेदाचार्यों ने उल्लेख किया है, किन्तु इसके अतिरिक्त वेदों में ही आन्तरिक प्रमाण के रूप में कुछ मन्त्र ऐसे मिलते हैं, जिन मन्त्रों से यह सिद्ध होता है कि वेदों का विभाजन किसी व्यक्ति विशेष ने नहीं किया है, अपितु वेद आदि काल से ही चार भागों में विभक्त हैं, क्योंकि व्यास और उनके पिता पराशर आदि सब ने भी वेदों का अध्ययन किया था। अतः इन बातों से प्रमाणित होता है कि वेदों के विभाजन कर्ता के विषय में महीधर आदि विद्वानों का कथन सत्य नहीं है। जिस पर इस शोधपत्र में विस्तार से समीक्षा की गई है।

मुख्य शब्द

वेद, मन्त्र, विभाजन, अपान्तरतमा, अथर्वा, व्यास, अन्तःप्रमाण, बाह्यप्रमाण, यज्ञक्रिया ।

वेद सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान का भण्डार है। वह भारतीय संस्कृति का प्राण है। वैदिक सनातन मान्यता के अनुसार वेद ईश्वर द्वारा प्रदत्त होने के कारण अपौरुषेय हैं। अर्थात् वेद किसी मनुष्य की बुद्धि द्वारा रचित नहीं है। जिस प्रकार इस जगत में सूर्य, चन्द्र, आकाश, जल, वायु आदि पदार्थों की रचना ईश्वर के द्वारा हुई है, उसी प्रकार वेद की भी रचना ईश्वर के द्वारा हुई है। अतः सूर्य, चन्द्रादि का प्रकाश तथा जल, वायु आदि पदार्थों का महत्व हमारे जीवन में जितना है, उतना ही महत्व वेद का भी है। यह वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण ईश्वर की तरह नित्य और अनादि है। इस वेद के विषय में मध्यकाल के कुछ भाष्यकार मानते हैं कि वेद पहले एक ही था, बाद में उसके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के रूप में चार विभाग किये गये हैं।

वेद के विभागकर्ताओं के रूप में सब से पहले अपान्तरतमा का नाम उल्लेख मिलता है। आचार्य शंकर अपने वेदान्तसूत्र भाष्य में लिखते हैं कि व्यास से पूर्व भी वेदों का विभाग करने वाला अपान्तरतमा नामक कोई वेदाचार्य था। शंकराचार्य के अनुसार व्यास अपान्तरतमा का अवतार था। अतः वहाँ वे वेदान्तसूत्र के भाष्य (३/३/३२) में लिखते हैं '**अपान्तरतमा नाम वेदाचार्यः पुराणर्षिः विष्णुनियोगात् कलिद्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायनः सम्बभूव इति स्मरन्ति**'। अर्थात् अपान्तरतमा नाम का वेदाचार्य और प्राचीन ऋषि ही कलि द्वापर की सन्धि में विष्णु की आज्ञा से कृष्णद्वैपायन के रूप में उत्पन्न हुआ। महाभारत शान्ति पर्व (३३७/३८–६१) के अनुसार अपान्तरतमा वाणी का पुत्र था। वह त्रिकालज्ञ और सत्यवादी भी था। उसी ने वेदों का विभाजन किया। कुछ लोग उसे प्राचीनगर्भ के नाम से भी जानते थे। अहिर्बुध्न्यसंहिता के अनुसार विष्णु की आज्ञा से त्रेतायुग के आरम्भ में अपान्तरतमा नामक ऋषि ने वेदों का विभाजन किया। जैसा कि वहाँ उल्लेख है –

अथ कालविपर्यासाद् युगभेदसमुद्भवे ।। ११/५०
त्रेतादौ सत्वसंकोचाद्रजसि प्रविजृम्भिते । अपान्तरतमा नाम मुनिर्वाक्संभवो हरेः ।। ११/५३
कपिलश्च पुराणर्षिरादिदेवसमुद्भवः । हिरण्यगर्भो लोकादिरहं पशुपतिः शिवः ।। ११/५४
उद्भूत्तत्र धीरूपमृग्यजुः सामसंकुलम् । विष्णुसंकल्पसंभूतमेतद् वाच्यायनेरितम् ।। ११/५८

अर्थात् वाक् का पुत्र वाच्यायन अपर का नाम अपान्तरतमा था। कालक्रम के विपर्यय होने से त्रेतायुग के आरम्भ में विष्णु की आज्ञा से अपान्तरतमा, कपिल और हिरण्यगर्भ आदि ने क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, सांख्यशास्त्र और योग आदि का विभाग किया।

अहिर्बुध्न्यसंहिता, आचार्य शंकर से बहुत पूर्वकालीन है और अपान्तरतमा का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है तथा महाभारत के रचनाकार के रूपमें कृष्णद्वैपायन व्यास को माना जाता है। अतः इस प्रकार वर्णन से स्पष्ट होता है कि कृष्णद्वैपायन व्यास से भी पूर्व वेद चार भागों में विभक्त था।

अपान्तरतमा के अतिरिक्त अथर्वा को भी वेदों के विभाजनकर्ता के रूप में माना जाता है। पश्चिम बंगाल के वर्द्धमान जिले में एक प्रसिद्ध वेदाचार्य हुए हैं। जिनका नाम सत्यव्रत सामश्रमी था। उन्होंने अपने पाण्डित्य से कई सारे ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'निरुक्तालोचन'। जिसमें उन्होंने अथर्वा ऋषि को यज्ञ–प्रक्रिया का प्रथम प्रकाशक के रूप में माना है। उन्होंने उस ग्रन्थ के १५५ पृष्ठ पर लिखा है कि हौत्र आदि कार्य की सुविधा के लिए अथर्वा ऋषि ने एकरूपात्मक वेद को ऋग्वेदादि चार भागों में विभक्त किया। वहाँ उन्होंने अथर्वा ऋषि को यज्ञ प्रक्रिया का प्रथम प्रकाशक के रूप में सिद्ध करने के लिए अनेक ऋचायें उद्धृत की हैं। जैसे – **यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते** (ऋ. – १/८३/५) । **अग्निर्जातो अथर्वणा** (ऋ. – १०/२१/५) । **त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत** (ऋ. – ६/१६/१३) । **अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुगर्भं पितुरसुं युवानम्। य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्राणो वोचस्तमिहेह ब्रवः** (ऋ. – ७/२/१)। इन ऋचाओं से उन्होंने यह सिद्ध करना चाहा कि अथर्वा यज्ञ–क्रिया का प्रथम प्रकाशक है। यहां तक तो बात ठीक है कि अथर्वा यज्ञ–क्रिया का प्रथम प्रकाशक था, किन्तु इस को आश्रय बना कर यह कहना कि अथर्वा ने यज्ञ–प्रक्रिया के लिए या यज्ञीय कर्मकाण्ड रूप कार्य सम्पादन के लिए वेदों को चार भागों में विभक्त किया, यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि वेद आदि काल से ही चार भागों में विभक्त था। जिसके बहुत सारे प्रमाण संहिताओं में विद्यमान है। जिनका उल्लेख आगे विस्तार से किया जायेगा।

अपान्तरतमा और अथर्वा के पश्चात् हमारे समाज के जनमानस में वेदों के विभाजन कर्ता के रूप में एक मत और भी बहुत अधिक प्रचलित है। जिस के अनुसार माना जाता है कि महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास इतने ज्ञानी थे कि उन्होनें अपनी दिव्य दृष्टि से यह पहले से ही जान लिया था कि कलियुग में मनुष्यों की शारीरिक और बौद्धिक क्षमता दोनों घट जाएगी। बौद्धिक क्षमता के कम होने के कारण ही कलियुग में मनुष्य वेदों का अध्ययन करने और समझने में असमर्थ रहेगा। कलियुग में भी मनुष्य को वेदों का सही ज्ञान हो सके, इसलिए व्यास जी ने वेदों को चार भागों में बांटा था। वेदों का विभाजन करने के कारण ही वे वेदव्यास के नाम से भी प्रसिद्ध हुए। इस मत का प्रचार और प्रसार करने वालों में से सब से पहले निरुक्त की वृत्ति लिखने वाले आचार्य दुर्ग का नाम आता है। निरुक्त की वृत्ति (१/२०) में वे लिखते हैं कि '**वेदं तावदेकं सन्तमतिमहत्त्वाद् दुरध्येयमनेकशाखाभेदेन समाम्नासिषुः। सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः**'। अर्थात् वेद पहले एक था, पश्चात् व्यास के द्वारा वेद की अनेक शाखाएं समाम्नात हुईं। इस बात का थोड़ा बहुत उल्लेख विष्णु पुराण (३/३/१६/२०) और मत्स्य पुराण (१४४/११) में भी मिलता है –

जातुकर्णोऽभवन्मत्तः कृष्णद्वैपायनस्ततः ।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ।।
एकोवेदश्चतुर्धा तु यैः कृतो द्वापरादिषु ।
वेदश्चौकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।।

अर्थात् प्रत्येक द्वापर के अन्त में एक ही चतुष्पाद वेद चार भागों में विभक्त किया जाता है। यह विभागीकरण अब तक अट्ठाईस बार हो चुका है। जो कोई उस विभाग को करता है उसका नाम व्यास होता है।

वृत्तिकार दुर्ग के परवर्ती आचार्य भट्टभास्कर नाम से तैत्तिरीय संहिता का एक भाष्यकार हुआ है। उस भाष्य के प्रारम्भ में वह लिखता है कि '**पूर्वं भगवता व्यासेन जगदुपकारार्थम् एकीभूयस्थिता वेदा व्यस्ताः शाखाश्च परिच्छिनाः**'। अर्थात् भगवान व्यास ने एकत्र स्थित वेदों का विभाग करके शाखाएं नियत की।

भट्टभास्कर के पश्चात् माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार के रूप में महीधर का नाम प्रसिद्ध है। उस संहिता के भाष्य लिखने से पहले वह लिखता है कि '**तत्रादौ ब्रह्मपरम्परया प्राप्तं वेदं वेदव्यासो मन्दमतीन्मनुष्यान्विचिन्त्य तत्कृपया चतुर्धा व्यस्य ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यांश्चतुरो वेदान् पैलवैशम्पायनजैमिनिसुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश ते च स्वशिष्येभ्यः। एवं परम्परया सहस्रशाखो वेदो जातः। तत्र व्यासशिष्यो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यादिभ्यः स्वशिष्येभ्यो यजुर्वेदमध्यापयत्। तत्र दैवात्केनापि हेतुना क्रुद्धो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यं प्रत्युवाच मदधीतं त्यजेति। स योगसामर्थ्यान्मूर्ता विद्यां विधायोद्ववाम। वान्तानि यजूंषि गृह्णीतेति गुरूक्ता अन्ये वैशम्पायनशिष्यास्तित्तिरयो भूत्वा यजूंष्यभक्षयन्। तानि यजूंषि बुद्धिमालिन्यात्कृष्णानि जातानि। ततो दुःखितो याज्ञवल्क्यः सूर्यमाराध्य अन्यानि शुक्लानि यजूंषि प्राप्तवान्**'।

अर्थात् ब्रह्मा की परम्परा से प्राप्त वेद को मनुष्यों की सुविधा के लिए व्यास ने चार भागों में बांट कर अपने चार शिष्य पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्तु को उपदेश दिया और वे सब अपने शिष्यों को पढ़ाया। इस परम्परा से वेद की सहस्र शाखाएं हो गई। व्यासशिष्य वैशम्पायन ने अपने

याज्ञवल्क्य आदि शिष्यों को भी यजुर्वेद को पढ़ाया। एक बार गुरु वैशम्पायन किसी दैविक कारणवश अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से रुष्ट हो गये और उन्होंने उनसे कहा कि तुम मेरे द्वारा दी गई शिक्षा को लौटा दो। याज्ञवल्क्य ने योगसामर्थ्य से सारी मन्त्रविद्याएं उगल दी। उगली हुई मन्त्रविद्या को वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिरि का रूप धारण करके खा लिया। अतः उनकी शाखा तैत्तिरीय कहलाई। उसके पश्चात् दुःखी याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना की और मध्याह्न के सूर्य से पुनः यजुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। अतः उन की शाखा माध्यन्दिन कहलाई।

इस प्रकार बातें महीधर ने अपने माध्यन्दिन संहिता के भाष्य में उल्लेख किया है। ये बातें उन्होंने कहाँ से लिया है या इन बातों का आधार क्या है? वहाँ उन्होंने ये सब नहीं बताया है। अतः ये बातें कहाँ तक सच है यह विचारणीय विषय है।

उपर्युक्त मध्यकालीन भाष्य या ग्रन्थकारों की पर्यालोचना से वेदों के विभाजन करने वालों की संख्या अपान्तरतमा, अथर्वा और महर्षि व्यास के रूप में तीन हो गई। अब इन तीन में से किसको विभाजन कर्ता के रूप में स्वीकार करें? एक को स्वीकार करने से दूसरे के प्रति अन्याय होगा, दूसरे को माने तो तीसरे के प्रति अन्याय होगा। क्या ये तीनों ने एक साथ मिलकर वेदों का विभाजन किया है? ऐसा तो नहीं हो सकता, क्योंकि तीनों के समय सीमा में बहुत अन्तर है। सम्प्रति यह बहुत गम्भीर समस्या है। अतः इस समस्या का समाधन निम्न प्रकार किया जा सकता है।

वस्तुतः किसी भी बात को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए आन्तरिक (अन्तःसाक्ष्य) और बाह्यिक (बाह्यसाक्ष्य) के रूप में दो प्रमाणों की आवश्यकता होती है। इन दो आन्तरिक और बाह्यिक प्रमाणों में से आन्तरिक प्रमाण अधिक बलवान होता है। जब अपने किसी विषय पर लेखक अपने ग्रन्थ में स्वयं लिखता है, उसे आन्तरिक प्रमाण कहते हैं। जैसे बाणभट्ट ने अपने किसी ग्रन्थ में पिता का नाम स्पष्ट रूप से चित्रभानु और माता का नाम राज्यदेई के रूप में उल्लेख किया है, उसके माता–पिता का नाम ढूंढने के लिए किसी दूसरे के द्वारा रचित ग्रन्थ में जाने की जरूरत नहीं है। दूसरों की अपेक्षा खुद को अपने माता–पिता या अन्य किसी विषय का ज्ञान अधिक रहता है। अतः बाह्यिक प्रमाणों की अपेक्षा आन्तरिक प्रमाण अधिक बलवान होता है। जब कोई लेखक अपने बारे में अपने ग्रन्थ में स्वयं कुछ नहीं लिखता है, तब उसके बारे में जानने के लिए उसके समकालीन या परवर्ती कालीन लेखकों के ग्रन्थों में जाना पड़ता है। उसके बारे में दूसरे के ग्रन्थों में जो भी तथ्य या प्रमाण मिलता है, उसे बाह्यिक प्रमाण कहते हैं। जैसे बाणभट्ट यदि अपने माता–पिता के बारे में अपने ग्रन्थ में कुछ न लिखता और दूसरों के ग्रन्थों से पता चलता कि उसके पिता का नाम चित्रभानु है, वह बाह्यिक प्रमाण होता।

इस प्रकार वेदों के विभाजन कर्ता के बारे में भी देखना है कि क्या वेदों में उसके विभाजन कर्ता के लिए कुछ लिखा है या नहीं। यदि कुछ तथ्य स्पष्ट रूप से उल्लेख मिल जाय तो बाह्यिक प्रमाणों की आवश्यकता नहीं होगी और यदि न मिले तो बाह्यिक प्रमाणों की आवश्यकता होगी। इस दृष्टि से उपर्युक्त आचार्य दुर्ग, भट्टभास्कर, सत्यव्रत सामश्रमी और महीधर द्वारा उल्लेखित नामों का उल्लेख किन्तु वेदों में आन्तरिक प्रमाण के रूप में कहीं नहीं मिलता है। लेकिन इसके अतिरिक्त वेदों में कुछ तथ्य या प्रमाण ऐसे मिलते हैं कि जिससे स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि वेदों का विभाजन उपर्युक्त व्यास आदि किसी ने नहीं किया है, अपितु वेद अनादि काल से ही ऋगादि चार भागों में foHkä gSA tS&os l áqr k,apkj gksusd sdkj.k eU=kssa'वेदाः' के रूपमें वेद शब्द का बहुवचनान्त

पद बहु बार प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद (४/३५/६) के एक मन्त्र में वेदशब्द स्पष्ट रूप से बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है – **'यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः'** । अर्थात् जिस परब्रह्म में समस्त विद्याओं के भण्डार वेद स्थित हैं। यहाँ **'वेदाः'** पद निश्चित रूपसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का द्योतक है। उसके पश्चात् पुनः अथर्ववेद में एक और मन्त्र मिलता है जिसमें ऋगादि वेदचतुष्टय को बताने के लिए वेद पद बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है।

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ।। (अ.–१६/६/१२)

इस मन्त्र में प्रयुक्त **'वेदाः'** पद का अर्थ करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं कि **'वेदाः सांगाश्चत्वारः'**। अतः यहाँ भी **'वेदाः'** रूप बहुवचनान्त पद से ऋग्यजुः आदि चारों वेदों का अभिप्राय लिया गया है। इस के बाद तैत्तिरीय संहिता (७/५/११/२) में भी वेद शब्द का बहुवचनान्त पद के रूपमें प्रयोग देखने को मिलता है – **'वेदेभ्यः स्वाहा'** । इस प्रकार काठक संहिता (५/२) में भी **'वेदेभ्यः स्वाहा'** के रूप में वेद शब्द का बहुवचन में प्रयोग परिलक्षित होता है। ऋग्वेद (४/५८/३) में भी वेदों के चार होने का संकेत मिलता है – **'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः'** । इस मन्त्र में **'चत्वारि'** पद प्रयुक्त हुआ है। इस मन्त्र के भाष्य में आचार्य यास्क ने निरुक्त (१३/७) में **'चत्वारि'** पद का अर्थ **'चार वेद'** ही किया है। आचार्य यास्क के पश्चात् सायण ने भी वेदार्थप्रकाश (४/५८/३) में **'चत्वारि'** पद का अर्थ **'चत्वारि शृङ्गा चत्वारो वेदाः शृङ्गस्थानीयाः'** ऐसा कह कर **'चार वेद'** ही अर्थ किया है। इस प्रकार इन आन्तरिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि व्यास आदि किसी ने वेदों का विभाजन नहीं किया है, अपितु वेद प्रारम्भ से ही चार भागों में विभक्त है।

उपर्युक्त वर्णनों के पश्चात् कुछ मन्त्र आन्तरिक प्रमाण के रूप में ऐसे भी हैं जिनमें स्पष्ट रूप से ऋगादि चारों वेदों का नाम उल्लेख है। जैसे – एक मन्त्र ऐसा है जो ऋग्वेद (१०/६०/०६), यजुर्वेद (३१/०७) और अथर्ववेद (१६/०६/१३) में मिलता है –

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत म

इस मन्त्र में परमात्मस्वरूप यज्ञ से चारों वेदों की उत्पत्ति के बारे में वर्णन है। यहां 'ऋचः' शब्द से ऋग्वेद, 'यजुः' शब्द से यजुर्वेद, 'सामानि' शब्द से सामवेद और 'छन्दांसि' शब्द से अथर्ववेद का नाम उल्लेख है। अथर्ववेद (१०/०७/२०) में एक मन्त्र और भी है जिसमें चारों वेदों का नाम स्पष्ट रूप से पाया जाता है –

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् म

यहां भी 'ऋचः' पद से ऋग्वेद, 'यजुः' पद से यजुर्वेद, 'सामानि' पद से सामवेद और 'अथर्वाङ्गिरसः' पद से अथर्ववेद का नाम उल्लेख है। कुछ विद्वान **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'** आपस्तम्ब (१/१/३१) के इस वेदलक्षण के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों को भी वेद के रूप में स्वीकार करते हैं। ब्राह्मण के अन्तर्गत आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ समूह भी आते हैं । इस प्रकार ब्राह्मण भाग भी यदि आन्तरिक प्रमाण है तो शतपथ ब्राह्मण (१४/५/४/१०) और बृहदारण्यक उपनिषद् (४/५/११) में एक ऐसी पंक्ति आती है जिसमें चारों वेदों को ईश्वर का निःश्वास बताया गया है तथा उसमें चारों

वेदों का नाम स्पष्ट रूप से उल्लेख भी है – **'एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरसः'**। इस में चारों वेदों का नाम स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। छान्दोग्योपनिषद् (७/१/२) में भी एक प्रसंग ऐसा आता है जिस में नारद ने क्या क्या अध्ययन किया है उसे बताते हुए सनत्कुमार को कहता है कि **'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्'**। अर्थात् हे भगवन्! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चतुर्थ अथर्ववेद का अध्ययन किया है। यहां छान्दोग्योपनिषद् के नारद के वाक्य में भी चारों वेदों का नाम पाया जाता है। तदनन्तर मुण्डक उपनिषद् (१/१/५) में जब '**परा**' और '**अपरा**' विद्या की बात आती है वहां '**अपरा**' विद्या के विषय में वेदाङ्गों सहित चारों वेदों का नाम स्पष्ट रूप से उल्लेख पाया जाता है।

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चौवापरा च ।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।।

यहाँ भी चारों वेदों का नाम स्पष्ट रूप से उल्लेख है। इस प्रकार और भी बहुत सारे मन्त्र हैं जिनका यहाँ विस्तार भय के कारण उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

उपर्युक्त आन्तरिक प्रमाण स्वरूप मन्त्रों में उल्लेखित चारों वेदों के ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि नाम स्पष्ट रूप से पाये जाने से यह सिद्ध होता है कि महीधर आदि भाष्यकारों का जो वचन है कि व्यास आदि ने चारों वेदों का विभाजन किया है, यह बात सत्य नहीं है, अपितु वेद सृष्टि के आदि से एवं व्यास आदि के पूर्व से ही चार भागों में विभक्त था। वेदों के ऋगादि नाम व्यास आदि के द्वारा प्रदत्त नाम नहीं है। क्योंकि विश्व का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद को माना जाता है। वहां ऋग्वेद आदि चारों वेदों का नाम स्पष्ट उल्लेख है। यदि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये नाम व्यास आदि ने दिया है तो यह मानना होगा कि व्यास पहले हुए हैं और वेदों की उत्पत्ति व्यास के बाद हुई है, यह नहीं माना जा सकता। अतः महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में लिखते हैं कि **'जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठे किये, यह बात झूठी है। क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, (प्रपितामह) पराशर, शक्ति, वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे'।** अतः प्रमाणित होता है कि वेदों का विभाजन व्यास आदि किसी ने नहीं किया है, अपितु वेद आदिकाल से ही चार भागों में विभक्त था, है और रहेगा भी।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. गीताप्रेस ।(Ed.) (१९९५)। ***बृहदारण्यकोपनिषद्,*** गीताप्रेस गोरखपुर, गोरखपुर।
2. प्रसाद, महावीर। (Ed.) (२००८)। ***छान्दोग्योपनिषद्,*** चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
3. रामानुज, आचार्य। (१९१६)। ***अहिर्बुध्न्यसंहिता,*** अडैयार पुस्तकालय, मद्रास।
4. शास्त्री, छज्जुराम। (Ed.) (२०१६)। ***निरुक्तम्,*** मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. शोधसंस्थान, श्रद्धानन्द वैदिक। (Ed.) (२००८)। ***यजुर्वेदभाष्यम्,*** श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, हरिद्वार।
6. सत्यप्रकाश, स्वामी। (Ed.) (२०१०। ***शतपथब्राह्मणम्,*** विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली।
7. सरस्वती, जगदीश्वरानन्द। (Ed.) (२०११)। ***महाभारतम्,*** विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द,

दिल्ली।

8. सरस्वती, दयानन्द। (२०१०)। ***सत्यार्थप्रकाश,*** आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
9. सरस्वती, दयानन्द। (२०१४)। ***ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका***, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।
10. सरस्वती, सत्यनन्द। (Ed.) (२०१६)। ***ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्,*** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
11. सातवलेकर, दामोदर। (Ed.) (१९८५। ***ऋग्वेद का सुबोध भाष्य,*** स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड।
12. सातवलेकर, दामोदर। (Ed.) (१९६०)। ***अथर्ववेद का सुबोध भाष्य***, स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड।
13. सामश्रमी, सत्यव्रत। (१९०७)। ***निरुक्तालोचनम्,*** हितव्रतसामकण्ठ सत्यप्रेस, कलकत्ता।
14. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत। (Ed.) (……)। ***एकादशोपनिषद्,*** विजयकृष्ण लखनपाल, दिल्ली।